चम्पक सेठ

प्रकाशक

वृहद् (बड़) गच्छीय श्रीपूज्य जैनाचार्य
श्रीचन्द्रसिंहसूरीश्वर–शिष्य

पण्डित काशीनाथ जैन

कलकत्ता
२०१ हरिसन रोड, के "नरसिंह प्रेस में"
मैनेजर पण्डित काशीनाथ जैन
द्वारा मुद्रित

प्रथमवार २०००] सन् १९२४ [मूल्य ॥)

भूमिका

अन्तिम तीर्थङ्कर श्रीभगवान् महावीरने भव्य जीवोंके उपकारके निमित्त, अनेक प्रकारके दुःखरूपी तरङ्गोंसे भरे हुए संसार-समुद्रके पार पहुँचनेके लिये साधन-स्वरूप चार प्रकारके धर्मका, बारह परिषदोंके सामने, सुवर्ण, रत्न और चाँदीके समवसरणमें बैठे हुए यथार्थ स्वरूप प्रदर्शित किया है। दान, शील, तप और भावना, इन चार प्रकारके धर्मोंके विषयमें वर्णन करते हुए आपने दान-धर्मका सबसे पहले उपदेश दिया है। दान धर्म—सब धर्मोंका शिरोमणि है। तीर्थङ्कर भगवान्ने भी दीक्षा लेनेपर पहले इसी दान-धर्मको स्वीकार किया था और साम्वत्सरिक दान दिया था। दान दश प्रकारका है। मुख्य दान पाँच प्रकारका है,—"सुपात्रदान, अभयदान, अनुकम्पादान, कीर्त्तिदान और उचित दान। इनमें भी सुपात्र-दान और अभय-दान—ये दोनों सर्वोपरि हैं। इन दोनोंमें भी सुपात्रदानको जैन-शास्त्रोंने सर्वोत्कृष्ट माना है। इससे मोक्ष तक प्राप्त होती है।

सुपात्रदानका आराधन करनेसे; अर्थात् सुपात्र-दान देनेसे अनेक भव्यप्राणियोंको परम पदतक प्राप्त हो गया है। इस सम्बन्धमें जैनशास्त्रोंमें भरतचक्रवर्तीसे लेकर शालिभद्र श्रेष्ठी-पुत्र तक असंख्य दृष्टान्त भरे पड़े हैं। सुपात्र-दानका सच्चा स्वरूप यह है—जैन-वाणीका सम्यक् प्रकारसे आराधन करने वाले, पञ्चाचारका पालन करनेवाले और पञ्चमहाव्रतको धारण करनेवाले मुनिमहाराजको त्रिकरण-शुद्धि-युक्त अन्न-पानादिकका दान करना। इससे उत्तरोत्तर सर्वोत्कृष्ट सुखो की प्राप्ति होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं। इस अतीव उत्तम दान धर्मके अन्तर्गत सुपात्र दानके विषयमें एक महाकविने चम्पक श्रेष्ठीका चरित्र लिखा है। उसीका यह भाषान्तर पाठकोंको भेंट किया जाता है। इससे सुपात्र-दानका महत्व भली भाँति प्रकट होता है।

आशा है हमारी अन्यान्य पुस्तकोंके अनुसार सप्रेम इसे भी अपनाकर हमारे उत्साह को बढ़ायेंगे।

२७—८—२४
२०१, हरिसन रोड
कलकत्ता।

आपका
काशीनाथ जैन

सकल-शास्त्र-विशारद, गांभिर्यादिगुण-विभूषित, परोपकारपरायण क्षमागुण-सम्पन्न, परममाननीय, पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय श्रीमज्जैनाचार्य सागरानन्द सूरीश्वरजी की परम पवित्र सेवामें।

पूज्यपाद्!

आपने जैनसमाजके उत्कर्षके लिये अपना सारा जीवन अर्पित कीया है, आपने जैन शास्त्र-आगमोंके उद्धार करनेमें जो अप्रतिम परिश्रम प्रदान कीया है, आपने जिन शासनकी रक्षाके लिये जो अविरल उद्योग कीये हैं। एवं अपनी अनुपम उपदेश शैलीके द्वारा अनेकानेक अबोध आत्मओंका उद्धार कीया है, उन्हीं सब गुणोंसे आकृष्ट होकर यह मेरी "चम्पक सेठ" नामक लघु पुस्तिका आपश्रीके कर-कमलों में सादर भेंट करता हूँ आशा है, अंगिकार करेंगें।

आपका
काशीनाथ जैन

चम्पक सेठ

पहला परिच्छेद

कथारम्भ।

असंख्य द्वीप-समूहके मध्य भागमें बसे हुए, सब तरहकी सर्वोत्कृष्ट सम्पत्तिसे संयुक्त इस जम्बूद्वीपकी दक्षिण दिशामें भरत नामका क्षेत्र है। उसमें वैताढ्य पर्वत और गङ्गा तथा सिन्धु आदि नदियोंसे विभक्त होनेके कारण छः भाग बन गये हैं। इसी भरत क्षेत्रके मध्य खण्डमें चम्पा नामकी एक अत्यन्त सुहावनी नगरी है। उसमें हर एक प्रकारके व्यापारियोंके लिये अलग-अलग चौक-बाज़ार बने हैं। सौगन्धिक, गान्धिक, ताम्बूलिक, कांदविक, सुवर्णकार, माणिक्य—अन्न-व्यापारी, वस्त्र व्यापारी, चर्मकार,

कांस्यकार, माला कार, मणिकार, सूत्रकार, लोहकार, घृतापार्थिक, तैलक, सौमिक, कार्पासिक, भाण्डशालिक—बर्तन बेचने वाले काष्ठशालिक, रजक,—धोबी विमान शालिक, तन्तुवाचक, आदि चौरासी चौरस्ते वहांपर हैं; जो बड़े ही रमणीय हैं।

किसी ज़मानेमें वहाँ सामन्तपाल नामके एक न्यायगुणा-लङ्कृत नरपति रहते थे। उसी नगरमें बुद्धदत्त नामका एक व्यापारी भी रहता था, जिसके पास छानवे करोड़ मुहरोंकी माया थी। यह सेठ बड़ा ही कंजूस था, इसी लिये वह अपने इस धनको देवमन्दिरमें देवताकी तरह रखकर रात—दिन उसीकी पूजा किया करता था। वह प्रत्येक वर्ष अनुकूल समय देखकर गल्ले, घी और तेल-आदि खरीदता और उन्हें फ़ायदेके साथ बेंच डालता था. इसी तरह व्यापार करके उसने अनेक मूल्यवान् रत्न आदि भी कमाकर जमा किये थे। परन्तु देव-पूजा गुरु-भक्ति, साधर्मी-वात्सल्य और अतिथि-सत्कार आदि अच्छे कर्मोंको नहीं करनेके कारण वह अपने मनुष्य-जन्मको नाहक़ गवां रहा था। ऐसे ही कृपणोंके लिये शास्त्रकारोंने कहा है, कि जिसके घर कभी न तो पाहुने आते हैं और न साधर्मि, उसके लिये जीते-जी रोना आता है और उसके मर जानेपर खुशी होती है।

एक दिन रातको वह सेठ अपने शयन—मन्दिरमें लेटा हुआ अपनी अवस्थापर विचार करता हुआ जग रहा था,

इसी समय पिछले पहर न जाने किधरसे यह आवाज़ उसके कानमें पड़ी, कि इस लक्ष्मीको भोग करनेवाला तो पैदा हो चुका। यह सुनते ही वह अपने मनमें विचार करने लगा—"ऐं! यह क्या? तो क्या मेरे कोई पुत्र आदि नहीं होनेके कारण मेरी यह अपार सम्पत्ति कोई और भोगेगा?"

यही सोच—सोचकर उसे बड़ा पछतावा होनेलगा। लगातार तीन दिनोंतक उसने यही वाणी रातके समय सुनी। तब बहुत उकता कर उसने अपनी गोत्रदेवीकी पूजाकी और उनके सामने कुशकी चटाईपर उपवास करता हुआ बैठ रहा। उपवासके सातवें दिन देवीने प्रकट होकर कहा,—"सेठजी! तुमने जो अदृष्ट वाणी सुनी है, वह बिलकुल ठीक है। तुम्हारी लक्ष्मीको उपभोग करनेवाला तो पैदा हो चुका। अब मैं क्या करूँ? मेरा इसमें कोई वश नहीं; क्योंकि होनहार बड़ी प्रबल होती है।"

सेठने पूछा,—"देवी! यदि ऐसा ही है, तो कृपाकर इतना तो बतला दो, कि वह कहाँ पैदा हुआ है?"

देवीने कहा,—"काम्पिल्यपुर नगरके त्रिविक्रम नामक सेठके घरमें जो पुष्पश्री नामकी दासी है, उसीके पेटसे पैदा हुआ है।" यह कह, देवी अन्तर्धान हो गयीं।

इसके दूसरे ही दिन सेठने पारणा किया और अपने छोटे भाई साधुदत्तके सङ्ग सलाह करने लगा।

साधुदत्तने कहा,—"हे भाई! यदि देवीने ऐसा कहा है

तो ठीक ही है। होनहार प्रबल होती है, इसलिये तुम व्यर्थका सोच न करो; क्योंकि इसमें किसीका कोई वश नहीं चलनेका।"

बुद्धदत्तने कहा,—"भाई! यद्यपि होनहार हो कर ही रहती है, तथापि पुरुषको अपने पुरुषार्थसे काम लेनेमें जठापन नहीं करनी चाहिये। पुरुषार्थ कभी-कभी होनहारको भी उलट देता है। कहा भी है, कि,

"उद्यमं साहसं धैर्यं, बलबुद्धि-पराक्रमाः।
षडेते यस्य विद्यन्ते, तस्य दैवोपि शक्यते॥"

अर्थात्—उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम—ये छः चीज़ें जिसमें होती हैं, उससे दैव भी डरता है।"

साधुदत्तने कहा,—"भाई! यदि इन्द्र भी दैवको वशमें करके होनहारको उलट देनेकी चेष्टा करें, तो उन्हें भी कोरी हैरान ही हाथ आयेगी—उनका किया कुछ भी न होगा! कहते हैं, कि

"दैवमुल्लंघ्य यत्कार्यं क्रियते फलवन्न तत्।
सरांभश्चातकेनात्तं गलरन्ध्रेण निर्गतम्॥"

अर्थात्—"दैवका उल्लंघन करके जो कार्य किया जाता है, वह कभी फलदायक नहीं होता। यदि चातक पक्षी सरोवरका पानी पिये, तो वह उसके गलेके छेदकी राह बाहर निकल जाता है।" अब इस होनहारकी प्रबलताके विषयमें मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ, उसे सुनो।

"रत्नस्थल नामक नगरमें रत्नसेन नामके राजा रहते थे। उनके बहत्तर कलाओंमें निपुण रत्नदत्त नामका एक पुत्र था। राजाने कुमारके योग्य कन्या ढूँढ़नेके लिये सोलह-सोलह मन्त्रियोंको चारों दिशाओंमें भेज दिया। उनमेंसे प्रत्येकको कुमारका सुन्दर चित्र और उनकी जन्म—पत्रिका भी दे दी। उनमेंसे तीन तो कुमारके योग्य कन्या नहीं पाकर, व्यर्थ ही हैरानी—परेशानी उठानेसे ऊबकर पूर्वादि तीन दिशाओंमें घूम कर घर लौट चले। नाटक करते समय नाचका ताल भूल जानेसे नाचनेवालेको जैसा खेद होता है, वैसा ही खेद अनुभव कर, अपनी आत्माको कृतार्थ मानते हुए वे तीनों अपने नगरमें आये।

"इधर जो सोलह मन्त्री कौबेरी—उत्तर दिशाकी ओर गये थे, वे इधर-उधर घुमते—फिरते गङ्गानदीके किनारे बसे हुए चन्द्रस्थल नामक नगरमें आ पहुँचे। वहाँ चन्द्रसेन नाम के राजा रहते थे। उनके चन्द्रावती नामकी एक कन्या थी, जो बड़ी ही अलौकिक सुन्दरी और चौंसठ कलाओंमें प्रवीण थी। मन्त्रियोंने राजा चन्द्रसेनके पास जाकर उन्हें कुमारका चित्र और उनकी जन्म—कुण्डली दिखायी। राजाने उसी समय अपनी लड़कीको बुलवाकर देखा, कि इन दोनोंकी जोड़ी तो बहुत ही अच्छी होगी। इसी लिये उन्होंने उसी समय ज्योतिषियोंको जन्म-पत्र देखनेके लिये बुलवा भेजा।" सब देख—सुनकर, अगले बारह वर्षोंतकको गणनाकर उन

लोगोंने कहा;—"हे राजेन्द्र ! आजके सत्रहवें दिन जैसी श्रेष्ठ लगन पड़ती है, वैसी लगन फिर अगले बारह वर्षोंतक नहीं आनेकी ।"

राजाने कहा,—"वर तो बहुत दूर है और आप लोगोंने लगन इतनी पासकी विचारी, फिर कैसे क्या किया जाये !

मन्त्रियोंने कहा,—"महाराज ! आप पवन वेगा नामकी उस लाल साँडनीको भेज दें । वह बहुत जल्द कुमारको अकेले यहाँ ले आयेगी ।"

राजाने झट पट यह बात मानली और मन्त्रियोंके साथ उस पवनवेगा नामकी साँडनीको उसी समय रवाना किया । पाँच दिननें वे लोग राजा रत्नसेनकी राजधानीमें पहुँचे । राजाने राजकुमारी चन्द्रावतीका चित्र देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और कुमारको साँडनीपर सवार होकर उन्हें मन्त्रियोंके साथ जानेकी अनुमति दे दी ।

उन दिनों लङ्का नगरीमें रावण राज्य करता था । उसके पास तीनों खण्डोंकी ऋद्धियाँ मौजूद थीं, बेशुमार फ़ौज थी और इन्द्रादि देवता सब लोकपालोंके साथ उसकी सेवा करते थे । एक दिन उसने ज्योतिषीसे पूछा,-"मेरी मृत्यु कैसे होगी ?"

ज्योतिषीने कहा,—"हे दशानन ! अयोध्या नगरीमें जन्म लेनेवाले राम और लक्ष्मणके हाथों तुम्हारी मृत्यु होनी बदी है । वे दोनों वहाँके राजा दशरथके पुत्र होंगे ।"

यह सुन रावण बड़ी उदासमें पड़ा और अपने मन्त्रियोंके

साथ बैठकर विचार करने लगा। उनके विचारों का सारांश यही था, कि किसी उपायसे ऐसा करना, जिसमें यह बात न होने पाये। मन्त्रियोंने कहा,---"होनहार कैसे मिट सकती है? विधिही तोड़ता और वही जोड़ता है; फिर वही चाहेतो जोड़े हुएको तोड़ डालता है। लोग लाख छटपटाया करें, पर विधिका लिखा को मेटनहारा?"

रावणने बड़े गर्वसे कहा,---"अजी रहने दो। उत्तम पुरुषों पर विधाताका क्या वश चल सकता है? ये तो पुरुषार्थके मानने वाले होते हैं।"

ज्योतिषीने कहा,—"राजन्! ऐसा मत बोलो। सुनो— आजके सत्रहवें दिन चन्द्रस्थलके राजाकी पुत्री और रत्नस्थलके राजाके पुत्रका परस्पर विवाह होने वाला है। विवाह मध्याह्न कालमें ही होगा। इस निश्चित बातको नहीं होने देनेके लिये तुम या तुम्हारा, कोई सेवक तैयार हो, तो इस बातकी हाथों हाथ परीक्षा भी हो जायगी, कि होनहार टल सकती है या नहीं।"

यह सुन, रावणने उस विवाहमें भांजी डालनेके इरादेसे राजकुमारी चन्द्रावतीको चुरवा मँगाया और लङ्कामें लाकर एक विद्या देवीको हुक्म दिया, कि तुम एक पेटीमें खाने पीने की चीज़ें, ताम्बूल तथा अन्य उपयोगी वस्तुओंके साथ इस राजकुमारीको भी रख लो और अपना रूप पर्वतके समान विशाल बनाकर उस पेटीको अपने मुँहके भीतर रखे हुई गङ्गा और समुद्रका जहां सङ्गम हुआ है, उसी स्थानके बीचोबीच जलमें

सत्तर दीनों तक छिपी बैठी रही । उस देवीका नाम तिमि-गिली था । उसने राजाका यह हुक्म पातेही उसीके अनुसार कार्य किया । इसके बाद रावणने व्यन्तर जातिके तक्षक नामक सर्पविशेषको बुलाकर कहा,—"राजकुमारी चन्द्रावतीके साथ व्याह करनेके लिये तैयार होकर आये हुए कुमार रत्नदत्तके पास जाकर तुम उसे काट खाओ !" तक्षकने तत्काल आज्ञाका पालन किया । उसके काटतेही कुमार बेसुध होकर गिर पड़े । मन्त्र जाननेवालोंने हज़ार झाड़-फूक की; पर कोई कुछभी काम न आयी । तब मन्त्रवादियोंने कहा,—"शास्त्रमें लिखा है, कि विषकी मूर्च्छा छः महीने तक रहती है । इसके लिये तुम लोग राजकुमारको जलमें डुबाये रखो—इनकी लाश न जलाओ ।"

विज्ञ पुरुषोंके मुँहसे ऐसी बात सुनकर राजाने एक बहुत बड़ा सन्दूक बनवाकर उसीमें राजकुमारकी लाश रखवा दी और उस सन्दूकको गङ्गाकी धारामें छुड़वा दिया । संयोगवश वह सन्दूक पानीमें बहता हुआ धीरे-धीरे उसी गङ्गासागर स-ङ्गम पर आ पहुँचा, जहाँ तिमिगिली कुमारी चन्द्रावतीको छिपाये बैठी हुई थी । ठीकही कहा है, कि जो कभी ध्यानमें भी नहीं आती, उसेही विधि-विधान बातकी बातमें कर डालता है ।

इधर होनहारके वशमें पड़कर तिमिगिली भी सत्तरवें दिनकी बात भूल गयी और ठीक उसी दिन मुँहमें पेटी

रखे-रखे उकताकर आपही-आप बोल उठी,—"अब तो यही जी चाहता है; कि ज़रा इस पेटीको मुँहसे बाहर निकालकर रख दूँ और गङ्गासागरमें क्रीड़ा करूँ।" यही सोच, उसने पेटी खोलकर कुमारी चन्द्रावतीसे कहा—"बेटी! मैं ज़रा थोड़ी देर यहीं जलमें क्रीड़ा करने जाती हूँ। तब तक तू भी ज़रा पानीके किनारे क्रीड़ा कर ले। यह कह वह तिमिगिली क्रीड़ा करनेके लिये दूर चली गयी।

इधर चन्द्रावती अपने क़ैदखानेसे निकलकर इधर-उधर घूमही रही थी, कि इतनेमें हवाके झोंकेसे बहती हुई राजकुमारवाली वह पेटी भी वहीं आ पहुँची। उस सन्दूकको देखकर चन्द्रावती को बड़ा कौतूहल हुआ और उसने झटपट उसे खोलकर देखा, तो उसमें राजकुमारके रूपरङ्गका एक आदमी सोया हुआ पाया। उसने तुरंतही अपनी अँगूठीसे वह अँगूठी उतार ली, जिसमें ज़हर उतारने वाली मणि जड़ी हुई थी और उसीको जलमें डुबोकर उसी जलसे कुमारका सिञ्चन करने लगी। तुरंतही कुमार होशमें आकर उठ बैठे। अब तो राजकुमारीको साफ़ मालूम पड़ने लगा, कि मैंने इन्हीं राजकुमारका चित्र उस बार देखा था। यही सोचकर वह मन-ही-मन बोली,—"अवश्य यही कुमार रत्नदत्त हैं, जिनके साथ मेरे पिताने मेरा विवाह निश्चय किया था।" यह बात मनमें आतेही वह बड़ी हर्षित हुई और कुमार भी उसे पहचानकर फूले अङ्ग न समाये। अब तो दोनों एक

दूसरेको अपनी रामकहानी सुनाने लगे। बातही-बातमें चन्द्रावती बोल उठी,—" आजही वह सत्रहवाँ दिन है।" अब क्या था ? दोनोंने उसी समय गान्धर्व रीतिसे परस्पर एक दूसरेके साथ विवाह कर लिया।

सच है, जो बात कभी ध्यानमें भी नहीं आती, जहाँतक कविकी कल्पना भी नहीं पहुँच पाती, जिसका कोई कभी सपना भी नहीं देखता, वही बात विधाता बड़ी आसानीसे कर डालता है।

इसके बाद तिमिंगिलीके आनेका समय निकट जान, समुद्रके किनारे पड़े हुए नाना प्रकारके रत्नोंको चुनकर कुमार और कुमारी, दोनों फिर तिमिंगिलीकी उस पेटीके अन्दर घुस गये। थोड़ीदेरके बाद आकर तिमिंगिलीने पेटीको बन्द देखकर पूछा,—"क्यों बेटी! क्या तू भीतर है? कन्या बोली—"हाँ, भीतरही हूँ और बड़े सुखसे हूँ। "इसके बाद वह देवी पहले की तरह उस पेटीको मुँहमें रखकर जलमें जा रही।

इधर रावणने सत्रहवें दिनकी दोपहरके बाद ज्योतिषी को बुलाकर कहा,—" देखो, तुम्हारी बात झूठी हो गयी; मैंने उन दोनों वर-कन्याओंका विवाह, जिसे तुम निश्चय बतलाते थे, नहीं होने दिया।"

यह कह, सब सभासदोंको अपनी बातका प्रमाण देनेके लिये उसने तिमिंगिली को बुलवाया और सबके सामने उसके मुखमें छिपाकर रखी हुई पेटीको खुलवायी। ज्योंही पेटी

खोली गयी, त्योंही उसके भीतरसे दिव्य रूपवान् स्वामीके साथ कुमारी चन्द्रावती निकल आयी। दोनोंके हाथमें ब्याहके नये कङ्गन बँधे थे। यह देखकर रावणके अचम्भेका कोई ठिकाना नहीं रहा। इस विचित्र घटनाका हाल पूछने पर वर-कन्याने अपना सब सीधा सच्चा हाल कह सुनाया। उनकी बात सुनकर रावणको इस बातका पूरा भरोसा होगया, कि कोई होनहारको नहीं टाल सकता। यही सोचकर उसने ज्योतिषीको खूब इनाम देकर विदा किया। रावणने कुमार और उसकी स्त्रीको विद्याधरोंके द्वारा उसके पिताके पास भिजवा दिया। उनके माता-पिता और हित-कुटुम्बी आदि उन्हें पाकर बड़ेही प्रसन्न हुए।

इस प्रकार कथा सुनानेके बाद साधुदत्त चुप हो गया। तब उद्योग वादी वसुदत्त सेठने कहा,—"भावी बड़ी प्रबल होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं; पर आख़ीरकार उद्यम भी तो कोई चीज़ है? देखो, नीतिमें कहा हुआ है, कि उद्योगी पुरुषसिंहोंको ही लक्ष्मी प्राप्त होती है—दैव—दैव चिल्लाना तो कोरे आलसी मनुष्योंका काम है। मनुष्यको चाहिये, कि दैवकी कुछ भी परवा न कर आत्मशक्तिका पूरा उद्योग करता हुआ उद्योग करे; क्योंकि यदि यत्न करनेपर भी कार्य्य-सिद्धि न हो, तो फिर अपना कोई दोष नहीं रह जाता। भाई साधुदत्त, देखो, मन लगाकर सुनो। मैं तुम्हें उद्योगका भी एक दृष्टांत सुनाये देता हूँ।—

"मथुरा-नगरीमें हरिबल नामके एक राजा रहते थे। उनके मन्त्रीका नाम सुबुद्धि था, जो बुद्धिके सचमुच समुद्र ही थे। कुछ दिन बाद राजा और मन्त्री, दोनोंके घर एक ही समय पुत्र उत्पन्न हुए। राजकुमारका नाम हरिदत्त और मन्त्री-पुत्रका नाम मतिसागर रखा गया। छठीकी रातको व्यन्तरीकेसे आकार-प्रकारवाली किसी स्त्रीको अपने घरसे निकल कर जाते देख, मन्त्रीने किसी तरह उसका हाथ पकड़ लिया और उसे जानेसे रोककर पूछा,—"क्यों देवी! तुम कौन हो?"

वह बोली,—"मन्त्री! मैं तो विधि नामकी प्रसिद्ध व्यन्तरी देवी हूँ। मैं दोनों कुमारोंके ललाटमें भाग्य—रेखा लिखने आयी थी और वही लिखकर लौटी जा रही हूँ।"

मन्त्रीने पूछा,—"ज़रा यह तो बतलाओ, कि तुमने क्या लिखा है।"

उसने कहा,—"यह राजकुमार तो बहुत बड़ा शिकारी होगा और प्रतिदिन मृग आदि जीवोंका शिकार किया करेगा। मैंने राजकुमारके ललाटमें तो यही लिख दिया है और मन्त्री-पुत्रके भाग्यमें यह लिखा है, कि वह लकड़हारा होगा और हर रोज़ लकड़ीका बोझा ले आया करेगा।"

यह सुन मन्त्रीने कहा,—"हे विधाता! तुमने इन दोनों लड़कोंके भाग्यमें ऐसी वंश—डाहर बात क्यों लिख दी।"

वह बोली,—"इन दोनोंकी भवितव्यता ही ऐसी थी, फिर इसमें कोई उलट-फेर कैसे कर सकता था।"

मन्त्रीने कहा,—"देवी! यदि ऐसी ही बात है; तो देखो, मैं तुमसे कहे देता हूँ, कि मैं अपने बुद्धि बलसे तुम्हारे इस कर्म-लेखको झूठा साबित कर दूँगा। अब तुम भी अभीसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेका प्रयत्न करो, जिसमें उन दोनोंके भाग्यमें तुमने जो कुछ लिखा है, वही हो। यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हारी बड़ी हँसी होगी।"

मन्त्रीके इन ताने-भरे वचनोंको सुनकर वह देवी यह कहती हुई अदृश्य हो गयी, कि अरे तू आदमी होकर इस तरह बढ़-बढ़कर क्यों बातें करता है? तेरा किया क्या हो सकता है? मन्त्री भी उसकी बातोंपर विचार करता और अपने इष्ट देवताका स्मरण करता हुआ सो रहा। इसी तरह कितने ही दिन बीत गये।

कुछ दिन बाद उस नगरीपर सरहदपरका कोई राजा अपनी सेना लेकर चढ़ आया। हरिबल राजाने अपनी सेनाके साथ उसका सामना किया और तरह-तरहके युद्ध किये; परन्तु अन्तमें वे हारे और मारे गये। वैरियोंने नगर अपने अधिकारमें कर लिया। इसी समय मौका पाकर हरिदत्त और मतिसागर-अर्थात् राजा और मन्त्रीके पुत्र—दोनों ही नगर छोड़ कर निकल भागे। सारी दुनियाकी खाक छानते और भीख माँगते हुए वे लोग लक्ष्मीपुर नामक नगरमें आये। संयोगवश राजकुमार एक व्याधा के (बहेलियेके) घर जा पहुँचे और उसीके नौकर हो रहे। कुछ दिनतक चिड़ीमारका

पेशा करनेके बाद राजकुमारने अपनी एक अलग कुटिया बना ली।

मन्त्री-पुत्र भी जंगलसे लकड़ियाँ चुनकर लाने और उन्हें ही बेचकर अपना पेट पालने लगा। सच है, कर्मका लिखा नहीं मिटता।

आरोहितुं गिरिशिखरं समुल्लंघ्य यातु पातालं।
विधिलिखिताक्षरमालं फलति कपालं न भूपालः॥

अर्थ—चाहे पर्वतके ऊँचे शिखर पर चढ़ जाओ, चाहे उसे लाँघकर पातालमें चले जाओ, विधाताने तुम्हारे ललाटमें जो कुछ लिख दिया है, वही फलेगा ; महज़ राजा-महाराजा होने से ही क्या होता है?

इधर सुबुद्धि नामक मन्त्रीने अपने मालिकको मरते और नगरको शत्रुओंके हाथमें चले जाते देख, उस नगरको छोड़कर दूसरे-दूसरे नगरोंमें घूमना शुरू किया। क्रमसे इधर उधरकी सैर करता हुआ वह भी उसी नगरमें आ पहुँचा, जिसमें रहकर उसका बेटा लकड़हारेका काम करता था। उसने एक बार अपने लड़केके सिरपर लकड़ियोंका बोझा देखकर कहा,—"क्यों बेटा! यह तेरा क्या हाल है?"

उसने कहा,—"पिताजी! मैं तो प्रतिदिन प्रातःकाल वनमें चला जाता हूँ और वहाँ एक घड़ी, एक पहर या सारा दिन मिहनत करता हूँ, तोभी एक ही बोझा लकड़ीका मि-

सकता है, अधिक नहीं। उसीसे मैं किसी-किसी तरह अपना पेट पाल लिया करता हूँ।"

मन्त्रीने अपनी बुद्धि लड़ाकर विधि—विहित कार्यको उलट देनेकी इच्छासे कहा,—"पुत्र ! जिस वनमें चन्दनकी लकड़ियाँ मिलें, उसी वनमें जाया करो और चन्दनके सिवा और किसी पेड़की लकड़ी न काटा करो। यदि किसी दिन चन्दनकी लकड़ी न मिले, तो उस दिन योंही भले ही रह जाना।

पुत्रने पिताकी यह बात सहर्ष स्वीकार कर ली। इसी तरह एक दिन मन्त्रीकी राजकुमारसे मुलाकात हुई। उनका सारा हाल पूछनेके बाद मन्त्रीने कहा,—"हे पुत्र! यदि तुम्हें शिकार करते समय कोई अच्छासा सफेद हाथी दिखायी दे, तो तुम उसे ही बाँध लेना और किसी मृग आदि पशुको कदापि न पकड़ना।"

राजकुमारने भी मन्त्रीकी यह बात मान ली। दोनों लड़कोंने मन्त्रीके कहे अनुसार ही कार्य किया। वे दिन भर भूखों रह गये; पर न मन्त्री-पुत्रने चन्दनके सिवा और कोई लकड़ी ली, न राजकुमारने हाथीके सिवा और जानवरको पकड़ा। इसी तरह साँझ हो गयी। यह देखकर विधि नामक देवीने सोचा, कि अब तो मेरी बात मिथ्या हुआ चाहती है, इसलिये उसने अपनी दैवी शक्ति द्वारा मन्त्री-पुत्रको चन्दनकी लकड़ियोंका बोझा दे दिया और राजकुमारके जा-

लमें एक मतवाले हाथीको लाकर फँसा दिया। दोनोंने नगरमें जाकर अपनी-अपनी चीज़ें बेंचीं और बहुतसा धन पैदा किया। इसी प्रकार वे प्रतिदिन करने लगे। धीरे-धीरे वे दोनों बड़े धनवान् हो गये। मन्त्री पुत्रने चन्दन बेंच-बेंच कर करोड़ों मुहरें इकट्ठी कर लीं और राजकुमारने थोड़े ही दिनोंमें हज़ारों हाथी जमा कर लिये।

इस तरह मन्त्रीकी बुद्धि काम कर गयी। मन्त्री-पुत्र अपना धन और राजकुमार अपना गजसैन्य लिये हुए अपने नगरमें आये और शत्रु राजाको हटा कर हरिदत्त राजा को गद्दी पर बैठाया। अनुक्रमसे मन्त्री-पुत्र और राज-पुत्र दोनों ही परम सुखी हो गये।

इतनी कथा सुनकर वृद्धदत्तने कहा,—"हे भाई! देखो, सुबुद्धि मन्त्रीने अपनी बुद्धिके ज़ोरसे विधाताका लेख भी मिटा ही दिया। इसीसे मैं कहता हूँ, कि उद्योगी पुरुषसिंहोंको ही लक्ष्मी मिलती है। जैसे सुबुद्धि मन्त्रीको अपने उद्योगका फल मिला, वैसेही मुझेभी मिलेगा।"

यह कह गधे, ऊँट, बैल, हाथी और गाड़ी आदि साथ लिये हुए वृद्धदत्त कांपिल्यपुर नामक नगरमें आया और अपने मालकी बिक्रीका इन्तज़ाम अपने विश्वासी आदमियोंके हाथमें देकर आप सेठ त्रिविक्रमके घर चला गया। वहाँ उसने ऐसी चेष्टा की, जिसमें उसके शरीरपरके हीरे-मोतीके गहने आदि सेठ त्रिविक्रमकी निगाह तले ज़रूर ही पड़ें।

उसे देखते ही त्रिविक्रमने बड़ी ख़ातिरसे उसे बैठाया और कहा,—"आपकी जबतक इच्छा हो, तब तक हमारे घर रहें। इसे अपना ही घर समझें।"

उसकी यह विनय-भरी बात सुन, बृहद्दत्त उसके घर रह गया और वहीं खाने-पीने और सोने लगा। इस प्रकार वहाँ रहते हुए उसने वस्त्राभरण आदिका दान कर-करके त्रिविक्रमकी स्त्री, पुत्र, पुत्री, दास—दासी और ख़ास करके पुष्पश्री नामकी उसकी गर्भवती दासीको भली भाँति प्रसन्न कर लिया। इसी तरह परस्पर दान—सम्मानके साथ रहते हुए उसने चार महीने बिता दिये। दोनों सेठोंमें खूब गहरी दोस्ती हो गयी।

इधर देशमें ख़रीद—बिक्रीका समय आया देख, एक दिन बृहद्दत्तने सेठ त्रिविक्रमसे अपने देशको लौट जानेकी आज्ञा माँगी ?"

यह सुन, सेठ त्रिविक्रमने कहा,—"जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये; क्योंकि नतो मैं जानेको कह सकता हूँ, न रहनेके लिये हठ कर सकता हूँ। हाँ, इतनी विनय अवश्य है, कि फिर दर्शन देंगे और जबतक यहाँसे अलग रहेंगे, तब तक हमें याद करते रहेंगे। आप जहाँ जा रहे हैं, वहभी घरही है और यह भी घरही है, इसलिये आपको मैं क्यों रोकूँ ? हाँ, मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ, कि हमारे यहाँसे रथों, ऊँटों और गायोंमेंसे जो-जो आपको पसन्द हो अथवा रत्न

जड़े गहनोंमेंसे जोभी गहने आपको पसन्द हों अथवा और जो कोई वस्तु आपको प्रिय लगती हो, उसे आप हमारी प्रसन्नता और यादगारके लिये जरूर अपने साथ ले जाइये।"

वृद्धदत्तने कहा,—" अजी, आपका जो कुछ है, वह मेरा-हीं है, इसमें कहनाही क्या है ? मेरी चीज़ें भी आपकी ही हैं। यह भी निश्चयही मानेंगे। तोभी जब आप इस प्रकार आग्रह कर रहे हैं, तब मैं आपसे यही निवेदन करना चाहता हूँ, कि आप अपनी पुष्पश्री नामक परम चतुर दासी-को मेरे साथ जाने दीजिये। वह रास्तेमें हमारे लिये रसोई बना लिया करेगी। इसमें वह बड़ी निपुण है। घर पहुँचकर मैं उसे तुरतही यहां भेज दूँगा।"

बेचारा सेठ त्रिविक्रम नाहीं नहीं कर सका और बोला,—"भाई! मैं इसे तुम्हारे साथ भेज तो देता हूँ; पर देखना, इसे तुरतही लौटा देना; क्योंकि यह मुझे छोड़कर नहीं रह सकती।" यह कह, उसने दासीको वृद्धदत्तके साथ लगा दिया।

वृद्धदत्त उस दासीको रथपर बैठाकर ले चला। एक दिन जब वे लोग उज्जयिनी नगरीके पास पहुँचे, तब नियत खोटी होनेके कारण वह अपने सब साथियोंको आगे भेजकर आप पीछे रह गया। जब सब लोग बहुत दूर चले गये, तब एक निर्जन स्थानमें ले जाकर उस पापी सेठने दासीको रथसे नीचे गिरा दिया, और उसका गला घोंटकर उसे मार डाला। इसके बाद क़ानूनके पञ्जेसे बचनेके लिये वह डरा हुआ आगे बढ़ा।

उस पापी सेठने दासीको रथसे नीचे गिरा दिया, और उसका गला घोंटकर उसे मार डाला। (पृष्ठ १८)

इतनेमें उसे खोजता हुआ उसका एक साथी वहाँ आ पहुँचा और सेठको देखकर पूछा,—"आप पीछे क्यों रह गये ?" उस ने कहा,—"मेरे साथ जो दासी थी, वह शौचके लिये नीचे उतरकर कुछ दूर चली गयी थी। जब उसके लौट आनेमें बड़ी देर हुई, तब मैंने उसे चारों तरफ़ खोजा; पर वह कहीं नहीं मिली।" इसी प्रकार उस दुष्टने सबको झूठी बात बतलायी और यही बात सेठ त्रिविक्रमके पास भी लिख भेजी।

मेरा वैरी मर गया—यही सोचकर हर्षित हुआ वृद्धदत्त अपनी नगरीमें आया। कुछ दिन बाद उसको कौतुकदेवी नामक स्त्रीके तिलोत्तमा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। धीरे-धीरे वह लड़की चौंसठ कलाओंमें कुशल हो गयी।

इधर उज्जयिनीके पास जिस रास्तेमें वृद्धदत्तने पुष्पश्री नामकी दासीको मार डाला था, वहाँपर उसके गर्भसे तुरत निकला हुआ बच्चा हाथ पैर मार-मारकर छटपटा रहा था। इसी समय उज्जयिनीमें रहनेवाली एक बुढ़िया किसी कार्यवश उधरहीसे जा रही थी। उसकी दृष्टि उस मरी हुई दासी और उसके तुरत पैदा हुए बच्चेपर पड़ी। उस बुढ़ियाके साथ तीन और चतुर स्त्रियाँ थीं। वे भी उसी जगह आ पहुँची। बालक को जीता देखकर बुढ़िया बोली,—"ओह! न मालूम किस चाण्डालने यह कुकर्म कर डाला है। यह काम किसी चोर-डाकूका तो है नहीं; क्योंकि स्त्रीकी देहपरके कीमती गहने ज्यों-के-त्यों पड़े हैं, शास्त्रोंमें अनाथ, चैत्य और अनाथ बालकका

उद्धार करनेवालेको बड़ा पुण्य होता है, ऐसा लिखा है। इस-लिये मैं तो इस बालकको ले जाकर पुत्रकी तरह इसका पालन-पोषण करूँगी।" यह कह, उस दासीकी देहपरसे सब गहने उतार उसने पोटली बाँध ली और उस बालकको लिये हुई अपने घर चली आयी।

घर आकर वह सबसे पहले राजाके पास पहुँची और उन से सब हाल ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। राजाने कहा,—"बुढ़िया! तू इस लड़केको मेरा पुत्र मानकर पोस ले और इसका हाल समय-समयपर मेरे पास आकर सुना जायाकर।" यह कह, राजाने उस दासीकी लाशको जलवा दिया और उस बालकका बड़ी धूमधामसे "चम्पक" नाम धराया; उसकी सब तरहकी देख-रेख राजा स्वयं करने लगे।

समय आनेपर राजाने बड़ी धूमधामसे उस लड़केका अक्षरारम्भ करवाया और उसे पाठशालामें पढ़नेके लिये भेजा। अपूर्व पुण्योंके प्रभावसे वह बालक थोड़े ही दिनोंमें सब विद्याओंमें निपुण हो गया। एक दिन जब पाठशालाके बालकोंकी आपसमें बहसें हुईं, तब चम्पकने अपने तर्कों और युक्तियोंसे सबको हरा दिया। इससे बहुतसे लड़के उससे नाराज़ हो गये और झगड़ा करने लगे। बातों-ही-बातोंमें लड़कोंने उससे कहा,—"अरे, तू बिना माँ-बापका बच्चा क्यों व्यर्थ इतना घमण्ड करता है?"

यह सुनकर उस बालकका जी बहुत छोटा हो गया। वह

उसी समय अपने घर आया और उस बुढ़ियासे पूछने लगा,— "माता ! मेरे पिताका नाम क्या है ?"

यह सुन, बुढ़ियाने उसे जिस तरह पड़ा पाया था, उसका सारा हाल ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। सुनकर बेचारा मन मारे रह गया।

दूसरा परिच्छेद।

प्राणान्तक नहीं—परिणय ?

धीरे-धीरे चम्पक जवान होगया। राजाके हुक्मसे उसने व्यापार करना भी शुरू किया और थोड़ेही दिनोंमें चौदह करोड़ मुहरें पैदा कीं। उसके गुणोंपर सभी बड़े-बड़े व्यापारी रीझ गये और उसके मित्र बन गये। एक बार किसी मित्र व्यापारीके पुत्रका विवाह चम्पा नगरीके पास किसी गाँवमें होनेवाला था। इसीलिये उस व्यापारीने बड़े आग्रहसे उसे बुलवाया। उधर कन्या-पक्षवालोंने भी दोस्तीका दावा करते हुए अपने मित्र वृद्धदत्तको बुलवा भेजा था, इसलिये वह भी वहाँ पहुँचा हुआ था। विवाह बड़ी निर्विघ्नताके साथ हो गया। इसके बाद भी कन्याके पिताने बरातको कुछ दिनोंके लिये ठहरा रखा। साथही वृद्धदत्त वगैरह जो लोग उसके यहाँ आये थे, वेभी ठहरे रह गये।

एक दिन नगरके बाहर एक बावलीके पास बहुतसे व्यापारी दाँतौन करनेके लिये बैठे हुए थे। उसी समय वृद्धदत्तने

चम्पकको देखा, और सोचने लगा,—"यह देवकुमारसा सुन्दर युवा कौन है?" इसके बाद दोनोंकी मुलाकात हुई और परस्पर सङ्गीत और काव्यकी चर्चा छिड़ गयी। बुद्धदत्त उसकी चतुराई, सुन्दरता और सौभाग्यको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और विचार करने लगा, कि यदि यह सुन्दर युवा मेरी कन्या का स्वामी हो, तो बड़ा अच्छा हो, इस लिये ज़रा इससे इसके कुल, वंश, नाम और निवास आदिका हाल पूछकर मालूम कर लेना चाहिये। यही सोचकर उसने चम्पकसे उसके कुल वंश आदिकी बात पूछी। सुनकर उसने वह सब बातें ज्यों-की-त्यों कह सुनायीं, जो उसने उस बुढ़ियासे सुनी थीं। चम्पकके जन्मवृत्तान्तकी बात सुनकर बुद्धदत्तने सोचा,—"अरे, यह तो वही आदमी मालूम पड़ता है, जिसे देवीने मेरी लक्ष्मीका भोगनेवाला बतलाया था। मैंने जल्दबाज़ीके मारे उस दासीको तो मार डाला; पर उसके गर्भको नष्ट नहीं कर दिया। उसीका यह परिणाम हुआ, कि यह जीता जागता निकल आया और आज इतना बड़ा हो गया है। ख़ैर, अब भी क्या बिगड़ा है? इसे उज्जयिनी पहुँचनेके पहलेही मार डालना चाहिये। यदि यह उस विशाल नगरीमें पहुँच जायेगा, तो फिर बहुतेरे मित्रोंसे घिरे होनेके कारण जल्दी चङ्गुलमें नहीं फँसेगा। इसलिये जो कुछ करना हो, अभी झटपट कर लेना चाहिये। रही हत्याकी बात, सो अब उसका क्या डर है? मैं तो पहले ही इसकी माँको मार चुका हूँ, जैसे

सस्तर वैसे अच्छो। इसलिये चाहे जैसे हो वैसे, मैं तो इसे मारे बिना न रहूँगा।"

मन-ही-मन यही सोचकर उसने चम्पकसे कहा,—"भाई! तुम मेरे पास चलकर रहो, तो थोड़ेही दिनोंमें तुम्हें करोड़ों मुहरोंका फ़ायदा हो जायेगा। इसके बाद तुम अपने घर चले जाना। बहुतसा किराना माल हमारे नगरमें सस्ते भावमें मिलता है और यहाँ वे महँगे भावोंमें बिकते हैं। इस लिये तुम एकबार मेरे नगरमें ज़रूर चलो। मैं तुम्हें पत्र लिखकर देता हूँ, उसे तुम वहाँ मेरे भाईको दिखलाना। वह तुम्हें बहुतसा माल खरीदवा देगा। वह सब यहाँ लाकर बेचोगे, तो करोड़ोंका फ़ायदा उठा लोगे। इस मामलेमें तुम मेरी बातका पूरा-पूरा विश्वास करो। मैंने दूसरे किसीको यह बात इसलिये नहीं बतलायी, कि वे सब धोखाधड़ी करेंगे और मैं स्वयं इसलिये नहीं जाता, कि मैं जिनके घर मिहमान होकर आया हूँ, वे मेरे इतनी जल्दी चले जानेसे बड़े नाराज़ होंगे।"

सेठ हरदत्तकी बातें सुन, करोड़ों रुपयेके लाभकी आशासे चम्पकका हृदय हर्षित हो गया। उसने चम्पा नगरी जाना स्वीकार कर लिया। इसके बाद दोनों जनोंने बरातियोंके साथ कन्याके पिताके घर भोजन किया। दूसरे दिन चम्पक चम्पानगरी जानेको तैयार हो गया। हरदत्तने अपने छोटे भाई साधुदत्तके नाम एक पत्र लिखकर उसे दे दिया, जिसमें उसने लिखा, कि—
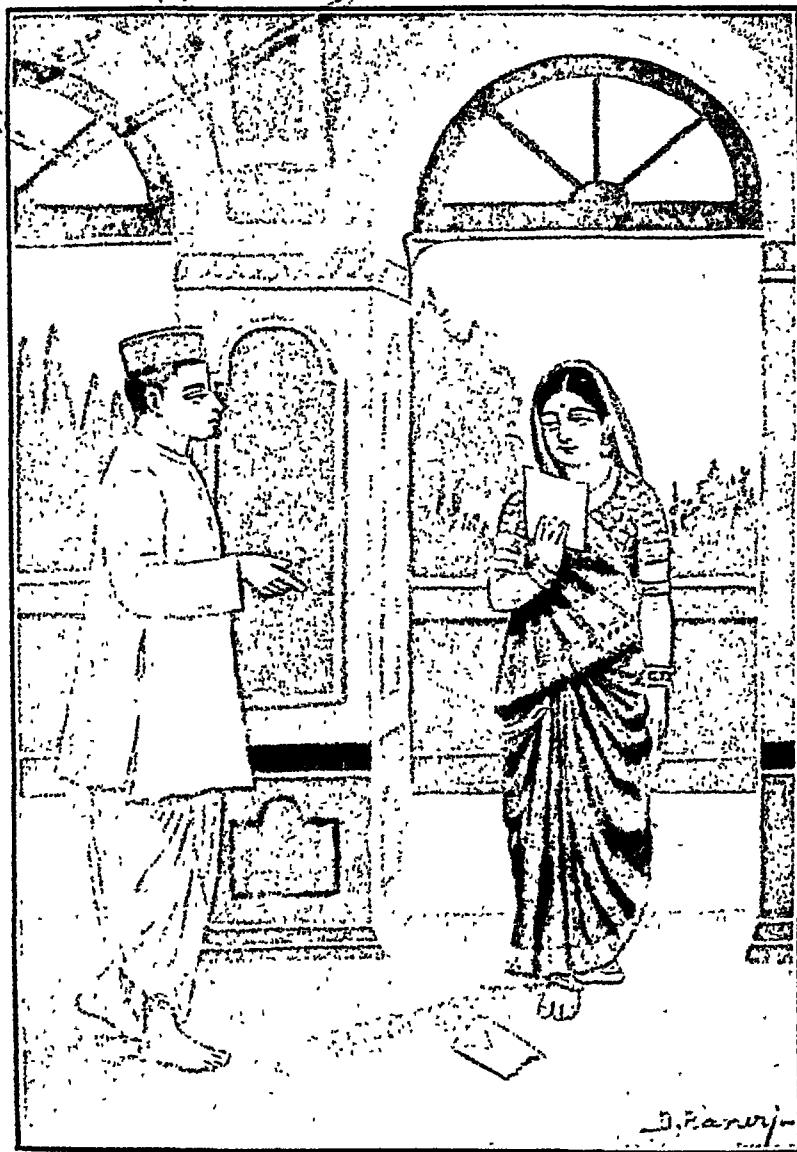
उसने अपने साथ लाया हुआ पत्र उसीको दे दिया। तिलोत्तमाने पत्र लानेवालाका रूप-सौन्दर्य देखतेही मुग्ध होकर कहा,— (पृष्ठ २५)

"इस दुरात्माने बहुतसे बड़े-बड़े लोगोंके सामने मेरा घोर अपमान किया है और झूठी-झूठी बातें कहकर मेरा मान घटाया है—मेरी हद दर्जेको बेइज्जती की है। इससे मेरे हृदयको बड़ी चोट पहुँची है। मैंने किसी-किसी तरह इसे पत्र लेकर तुम्हारे पास जानेको राज़ी किया है। इसलिये तुम इस पत्रको देखतेही पत्र लेजानेवालेको अपने घरके पिछ-वाड़ेवाले आँगनमें लेजाकर गुप्त रूपसे मार डालना और इस की लाश कुएँमें फेंक देना।

सवेरेही इसकी ख़बर विश्वास-योग निशानीके साथ किसी आदमीके द्वारा मेरे पास भिजवाना या ख़ुदही चले आना।"

इसी तरहका पत्र लिख, उसे बन्द कर बुद्धदत्तने चम्पक को दिया। वह भी पत्र लेकर लाखों करोड़ोंके लाभका सपना देखता हुआ चम्पानगरीकी ओर चल पड़ा। वहाँ पहुच, बुद्धदत्तके घरका पता लगाकर वह वहाँ पहुँचा और घोड़ेसे उतरतेही आवाज़ लगायी; पर कोई न बोला; क्योंकि उस समय बुद्धदत्तकी स्त्री किसी नातेदारके घर गयी हुई थी और साधुदत्त बिक्री की हुई चीज़ोंके दाम वसूल करने गया हुआ था। जब कहीं कोई न दिखाई दिया, तब चम्पक चुपचाप घरके अन्दर चला गया। वहाँ उसने अकेली तिलो-त्तमाको गेंद खेलते देखा। उसने अपने साथ लाया हुआ पत्र उसीको दे दिया। तिलोत्तमाने पत्र लानेवालेका रूप-

सौन्दर्य देखतेही मुग्ध होकर कहा,—"तुम अपना घोड़ा घुड़सालमें बांध आओ और तुम बाहरके बैठकख़ानेमें बैठ जाओ।"

चम्पकने उसकी ये विनय भरी बातें मान लीं। होनहार की बात, तिलोत्तमाने उस पत्रको खोलकर पढ़ा। पूरा पढ़कर वह सोचने लगी,—"अरे! पिताजीने किसलिये इस तरह की हत्यारोंका काम करनेका विचार किया? ऐसे देवकुमार सुन्दर युवक और सौभाग्यवान् पुरुषको किसलिये मार डालना चाहा है? यह सुन्दर युवा तो यदि मेरा स्वामी हो, तो अच्छा है।"

यही सोचकर उसने अपने पिताके हस्ताक्षरकी हू-ब-हू नक़ल करते हुए एक नया पत्र तैयार कर लिया, जिसमें उसने यह मज़मून लिखा,—

"इस चम्पक नामक युवाके साथ तुम आजही मेरी कन्या तिलोत्तमाका व्याह करदेना।"

ऐसा लिख, पहला पत्र नष्ट कर, उसे पहले पत्रकी तरह लिफ़ाफ़ेके अन्दर बन्द कर वह उस जगह पहुंची, जहां उसकी माता गयी हुई थी। वहां पहुंचकर उसने अपनी माताके हाथ में पत्र दे दिया।

सच है, जैसी होनहार होती है, वैसी ही बुद्धि उपजती है, वैसी ही मति हो जाती है और वैसे ही मददगार भी मिल जाते हैं।

शामको सागरदत्त व्यालू करनेके लिये घर आया। उसे

आते देख, चम्पकने उठकर उसे प्रणाम किया। पूछने पर अपना पूरा हाल बतलाते हुए उसने कहा,—"मैं सेठ वृद्धदत्तका पत्र लेकर आया हूँ।"

यह सुन, साधुदत्त उसे बड़े आदरसे घरके अन्दर ले गया। तिलोत्तमाकी माता भी घर आ गयी थी। उसने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने स्वामीका पत्र साधुदत्तके हाथमें दिया।

भोजनके समय सब लोग एक साथ बैठे, तब साधुदत्तने ऊँचे स्वरसे उस पत्रको पढ़ा। पत्रका हाल सुन और चम्पकका रूप तथा सौन्दर्य देखकर सब लोग बड़े ही हर्षित हुए। सब लोगोंने चम्पकके साथ ही बैठ कर भोजन किया।

समय बहुत कम होनेपर भी साधुदत्तने उसी रातको बड़ी धूमधामसे विवाहकी तैयारी करनी शुरू की। कौतुक देवीने भी भाई—बिरादरीकी स्त्रियोंको जमा किया। बहुतेरे लोग जमा हो गये। बड़ी हलचल होने लगी। उसी रातको दोनोंका व्याह करा दिया गया।

सवेरा होते ही चारों ओरसे लोग और लुगाइयाँ बधाइयाँ लेकर आने लगीं। सारा दिन बड़ी धूमधामसे बाजेगाजे बजते रहे।

इधर वृद्धदत्त उस दिन सन्ध्यातक चम्पकके मारे जानेका समाचार लेकर किसीके आनेकी बाट बड़ी उत्सुकताके साथ जोह रहा था। वह मन-ही-मन सोच रहा था, कि अब तो मेरा काम बन ही गया होगा। इसी समय चम्पानगरीसे

आये हुए किसी आदमिने उसे तिलोत्तमाके व्याहकी बात कह सुनायी। इस अनहोनी बातको सुनते ही उसके सिरपर वज्र घहरा पड़ा और उसका जी ऐसा बेचैन हुआ, कि वह तुरन्त घबराया हुआ अपने नगरमें चला आया। घरके पास पहुँचते ही उसने देखा, कि यहाँ तो जीमनवारकी तैयारी है। हज़ारों भाई—बिरादरीके लोग जमा हैं। यह देख, उसके कलेजेपर काला नागसा लोट गया। इसी समय साधुदत्तने अपने भाईके आनेका समाचार सुन, उसके पास आ, प्रणाम कर, कहा,—"भाई साहब! मैंने आपकी आज्ञानुसार सब काम कर डाले हैं।"

रुद्रदत्तको इस बातसे दुःख तो बड़ा हुआ; पर उसने मौक़ा देखकर चुप्पी साध ली और मीठे शब्दों द्वारा साधुदत्तकी मामूली तौरसे प्रशंसा कर दी।

व्याह—शादीकी कुल रस्में पूरी हो जानेपर एक दिन रुद्रदत्तने अपने भाईको अपने पास बुलाकर पूछा,—"भाई! तुमने बिना समझे बुझे मेरी कन्याका विवाह इसके साथ क्यों कर दिया?" यह सुन; साधुदत्तने कहा,—"मैंने तो आपके पत्रमें लिखे अनुसार ही कार्य किया था।" यह कह उसने रुद्रदत्तकी जाली चिट्ठी उसको दिखला दी। उसे पढ़ कर वह बार--बार हाथ मलने और पछताने लगा।

विशाला (उज्जयिनी) से विवाहके अवसर पर गये हुए हित-मित्र जब फिर वहाँ लौट आये, तब उन्हीं लोगोंके मुँहसे

चम्पककी पालक-माताने उसके विवाहकी बात सुनी। अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारे पुत्रके विवाहकी बात सुन, वह बहुत आनन्दित हुई और यह समाचार सुनानेवालोंको बार-बार आसीसें दीं।

इधर भाग्यके उदय होनेसे चम्पकश्रेष्ठीका सौभाग्य दिन-दिन बढ़ता चला गया। सारी चम्पानगरीके लोग उसे जीसे प्यार करने लगे।

—०—

तीसरा परिच्छेद।

गुप्त मन्त्रणा।

एक दिन रातके समय तिलोत्तमा अपने मकानकी तीसरी मंज़िलसे उतरकर नीचे चली आ रही थी। इसी समय दूसरी मंज़िलमें पहुँचते ही उसने किसीके बातें करनेकी आवाज़ सुनी। ज़रा गौर करके सुननेपर उसने उस आवाज़को पहचानकर कहा,—"अरे! यह तो मेरे पिताजीकी बोली मालूम पड़ती है!" इसके बाद उसने कान लगाकर सब बातें सुन लीं। उसके पिता कह रहे थे,—"प्यारी! मेरी लिखी हुई चिट्ठीका मज़मून बदल गया, इसके लिये मैं सिवा विधाताके और किसे दोष दूँ? विधि-विधाताने ही मुझे धोखा दिया। यद्यपि यह अब मेरा दामाद हो गया है, तथापि नीच दासीका पुत्र होनेके कारण मैं इसे फूटी आँखों भी देखना नहीं चाहता। काल पाकर यही मेरा वारिस भी बन जायेगा, यह बात तो मुझे और भी खटक रही है। इसलिये तुम उसे खाने, पीने या अन्य किसी चीज़के साथ ज़हर दे दो—बेटीका मुँह मत देखो। पुत्रियाँ

तो बहुत हुआ करती हैं और कौन इस एक पुत्रीके बिना वंश डूबा जाता है?"

वृद्धदत्तकी यह बात तिलोत्तमाकी माताने स्वीकार करली। तिलोत्तमाने यह दोनों ही बातें अच्छी तरह सुन लीं। सुनते ही वह उलटे पाँवों लौट गयी और अपने घरमें आकर विचार करने लगी,—"यदि मैं यह बात अपने स्वामीसे कहती हूँ, तो इस बातका भय है, कि कहीं ये मेरे माता—पिताको मार न डालें और नहीं कहती हूँ, तो इन्हींके प्राणोंपर आ बनती है। यह तो साँप—छुछूंदरवाली गति हुई। अब मैं क्या करूँ?"

यही सोचते-सोचते उसे एक बात सूझ गयी। तदनुसार उसने अपने स्वामीसे कहा,—"स्वामी! मैंने ज्योतिषीसे पूछ कर मालूम कर लिया है, कि आपपर दो महीनेतक बड़ी आपत्ति आनेकी सम्भावना है। इसलिये आप तीन महीने तक न तो इस घरका नाज खायें और न यहाँका पानी पीयें। यहाँके दाई—नौकर पान वगैरह लाकर दें, तो उसे भी न खायें। सदा किसी दूसरे मित्रके घर जाकर खा लिया करें।"

इस बातपर चम्पकको बड़ा विश्वास हो गया। उसने अपनी स्त्रीकी कही हुई सब बातें स्वीकार कर लीं और उसी तरह रहने लगा। वह सवेरा होते ही घरसे बाहर निकल जाता और साँझतक लौटकर आता। सारा दिन नगरमें

यार—दोस्तोंके बीचमें घूमता रहता। वह किसीका विश्वास नहीं करता था और जो कोई कुछ कहता, उसका उलटा ही करता था। उसे बात-बात पर सन्देह होता, कि अमुक मनुष्य अमुक बात किस गहरे मतलबसे कह रहा है। इस तरह चम्पकश्रेष्ठी सन्देहमय जीवन व्यतीत करने लगा।

एक दिन वृद्धदत्तने अपनी स्त्रीसे पूछा,—"प्यारी! यह कैसी बात है, कि अबतक मरा नहीं? क्या तुमने मेरे कहे मुताबिक़ काम नहीं किया?"

यह सुनते ही सेठानी तो सर्द हो गयी। बोली,—"स्वामी! मैं क्या करूँ? मैं तो रोज़ ही उसकी घातमें रहती हूँ; पर वह सारा दिन लापता रहता है। बाहर ही खाता-पीता है और यहाँके किसी आदमीके हाथका न तो पानी पीता है, न पान ही खाता है। रातको चुप-चाप आकर ऊपरकी मंज़िलमें सो रहता है।"

यह सुन, चम्पकको मार डालनेका कोई और उपाय करना पड़ेगा, यही सोचकर उसने अपने भण्डारके रक्षक सिपाहियोंको बुलाकर कहा,—"देखो, तुम लोग छलसे, बलसे कौशलसे, चाहे जैसे हो सके, मेरे जामाताको मार डालो। इसके लिये तुममेंसे प्रत्येकको सौ-सौ मुहरें इनाम दूँगा।"

उन्होंने भी लोभमें पड़कर सेठकी यह बात स्वीकार कर ली; छः महीने बीत गये, इन्हें भी कोई मौक़ा हाथ न लगा; कि अपना इरादा पूरा करें।

चौथा परिच्छेद।

ललाट-लिपि।

एकदिन रातके समय कहीं नाटक हो रहा था। होन-हारके वशीभूत चम्पकभी वहाँ बड़ी राततक नाटक देखता रहा। उसके सब साथी और रक्षक विधि-वशात् उसे छोड़कर अपने-अपने घर चले गये। आधीरातके समय चम्पक अकेला अपने घर आया। उसने घरके अन्दर घुसतेही देखा, कि ड्योढ़ीमें पत्थरके ऊपर पाहुनोंके सोने योग्य बहुत सी शय्याएँ बिछी रखी हैं। यह देखकर उसने सोचा, कि इतनी रातको दरवाज़ा खोलनेके लिये हल्ला गुल्ला करके शोर मचाना ठीक नहीं है, इसलिये यहीं सो रहूँ, तो ठीक है। यही सोचकर वह एक सेजपर सो गया। थोड़ीही देरमें उसे गहरी नींद आ गयी। इसी समय खज़ानेके सिपाहियोंने उसे वहाँ सोया देख, उसे मारनेके लिये तलवार उठायी। पर एकाएक उनके दिलमें यह ख़याल आया,—"स्वामीकी आज्ञा दिये हुए कई महीने बीत गये। इस बीच न तो उन्होंनेही फिर कुछ कहा, न हमींने पूछा। इस लिये मुम-किन है, कि इतने दिनोंमें उनका ख़याल बदल गया हो।

अतएव एकबार उनके पास जाकर पूछ आना चाहिये। यह तो यहाँ सोयाही है, उठकर कहीं भागता थोड़े ही है ? सहसा कोई-कोई काम कर बैठना ठीक नहीं ”

यही सोचकर वे सब सेठके पास पूछने आये। उनकी बात सुनतेही सेठने कहा,—“मैं तो एक नहीं, सौ बार तुमसे कह चुका, कि उसे मार डालो। इस लिये जल्दी जाओ और उसे मार कर काम तमाम कर दो। देर मत करो।”

इधर खटमलोंने चम्पकको इतना तङ्ग किया, कि उसकी नींद एकाएक टूट गयी और वह वहाँसे उठकर सीधा अपने मित्रके घर जाकर उसीके यहाँ सो रहा।

सिपाहियोंने लौटकर जब शय्या सूनी देखी, तब हाथमें आये हुए शिकार को उड़ा हुआ देखकर मन-ही-मन पेचोताव खाते हुए चारों ओर उसे खोजने लगे। इसी समय बुद्धदत्त भी अपनी आँखो चम्पककी हत्या देखनेके इरादेसे वहाँ आया; परन्तु उसने भी सेज खाली ही पायी। यह देख, उसने सोचा,—“यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है, कि न तो यहाँ चम्पक ही नज़र आता है, न मेरे सिपाही दिखलाई देते हैं। न मालूम चम्पक निकल भागा या मेरे सिपाही उसे मारकर कहीं बाहर फेंकने चले गये हैं।”

यही सोचता हुआ वह पासहीकी एक शय्यापर सिर ढक कर सो रहा। इसी समय चम्पकको खोजते-खोजते निराश हो कर वे सिपाही फिर वहीं लौट आये ; आतेही सिर ढक
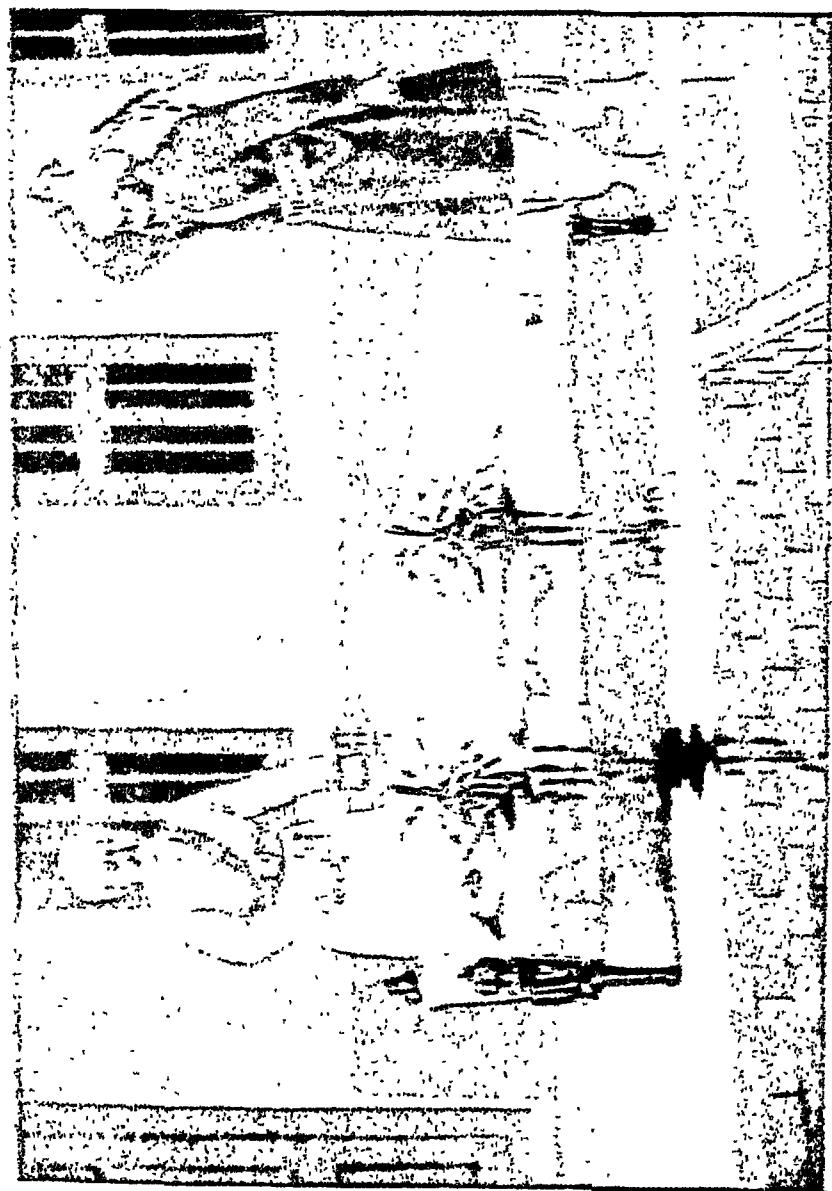
कर सोये हुए वृद्धदत्तकोही चम्पक समझकर उन सबने एकही साथ उसपर तलवारका वार किया। बेचारे बूढ़ेका दम तुरतही निकल गया। वह चिल्ला भी न सका। इसके बाद उन सबने उसकी लाश उठाकर बाहरकी एक कुएँमें डाल दी, उन्होंने सोचा,—"अब तो हमारा काम बन गया। अब हमें सेठसे सौ-सौ मुहरें अवश्य मिलेंगी।

सुबह होतेही वे सब सेठके पास इनाम माँगने आये। रास्तेमें उन्होंने देखा, कि रातको जो लाश उन्होंने कुएँमें डाली थी वह फूलकर पानी पर तैर रही है। अच्छी तरह नज़र गड़ाकर देखने पर उन्होंने पहचाना, कि यह तो सेठ-कीही लाश है। यह देख, उन्हें बड़ा अफ़सोस हुआ और वे हाहाकार करते हुए रोने लगे। अबतो वे लोग सबसे अपने पापकी बात कहने और अपनी आत्माको धिक्कार देने लगे। लोगोंने सारा हाल सुनकर वृद्धदत्तकी भी बड़ी निन्दा की और उसके मरने पर ज़रा भी शोक नहीं प्रकट करते हुए कहा,—"खाद खने जो औरको, वाको कूप तैयार।"

अपने बड़े भाईके मरनेका हाल सुनकर साधुदत्त भी छाती पीट-पीटकर रोता हुआ उसी दिन मर गया। दोनों भाइयों-की एकही साथ अन्तिम क्रिया की गयी। इसके बाद चम्पक श्रेष्ठी वृद्धदत्तकी ९६ करोड़ मुहरोंका मालिक हो गया और उसकी सारी सम्पत्ति इसीके हाथमें आ गयी। कुलदेवीकी बात सच हो गई। अब तो चम्पकने विशालासे अपनी माताके

तुरन्त उस बुढ़ियाको बुलवालिया और अपने पूर्वोपार्जित चौदह करोड़ सुवर्ण द्रव्यको भी मँगवा लिया। उसके दिन बड़े सुखसे कटने लगे। धीरे-धीरे उसका नाम सब व्यापारियोंमें प्रसिद्ध हो गया और उसका रोज़गार खूब चमक चला।

इस तरह पूर्व पुण्योंके प्रभावसे चम्पकको अपार सम्पत्ति मिल गयी। धीरे-धीरे उसका वैभव और भी बढ़ गया। ८६ करोड़ मुहरें तो खज़ानेमें जमा कर दी गयीं, ६६ करोड़ व्यापारमें लगायी गयी और ८६ करोड़ सूद-व्याज पर लगादी गयीं। इसके सिवा उसके पास एक हज़ार गाड़ियाँ, एक हज़ार छकड़े, सात-सात खण्डोंवाले एक हज़ार घर, एक हज़ार बाज़ार, एक हज़ार पाठशाला, ५०० हाथी, ५०० अच्छी नसलके घोड़े नित्य पास रहने वाले ५०० अंग रक्षक, ५०००० शूर-वीर, एक हज़ार ऊँट, एक लाख बैल, दस लाख गौएँ, और दस हज़ार नौकर-चाकर हो गये।

वह प्रतिदिन एक लाख मुहरें भोग-विलासमें खर्च करता और दश लाख मुहरें दीन-दुखियों और अनाथोंको दान करता था। इसके बाद वह एक जैन-मुनिके सत्सङ्गके कारण श्रावक-धर्ममें दीक्षित हो गया। वह दिनके तीनों समय जिन-पूजन करने लगा। इसके बाद उसने एक हज़ार जिन-मन्दिर बनवाये और पत्थर, सोना, चाँदी, स्फटिक तथा प्रवाल आदिकी लाखों जिन प्रतिमाएँ बनवायीं। इस प्रकार

अनेक देव-दुर्लभ भोग भोगते और श्रावक-धर्मका यथार्थ पालन करते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया।

इसी तरह समय बीतता रहा। एक दिन वहाँ केवली गुरुका समवसरण हुआ। यह समाचार सुनतेही उसने समाचार लानेवालेको खूब भरपूर इनाम दिया और अपने कुटुम्ब-परिवारके साथ बड़ी धन-दौलत लिये हुए गुरु महाराजके पास वन्दन करनेके लिये आया। पाँचो अभिगमको संरक्षण कर, केवली भगवान्‌को तीन बार प्रदक्षिण कर, सम्मुख आकर वन्दना की और उचित स्थानपर आ बैठा। इतनेमें लोकालोक प्रकाशक, तीनों भुवनके लोगोंके हृदयकी बात जानने वाले, संसार समुद्रसे पार उतारनेमें समर्थ, शुद्ध मार्गको प्रदर्शित करनेवाले गुरु महाराजने भव्य जीवोंके उपकारके निमित्त देशना देनी आरम्भ की :—

"हे भव्य प्राणियों! इस संसार-समुद्रमें अनेक प्रकारकी दुःख-रूपी तरङ्गे उठती हैं। इन तरङ्गोंमें डूबते उतराते हुए लोगोंको केवल धर्मही बचा सकता है। कहा है,

> जथ्थ य विसय विराउ कसायचाउ गुणेसु अणुराउ।
> किरिआ सु अप्पमन सो धम्मो सिवसुहोवाउ॥

अर्थात्—"जहाँ विषयसे विराम होता है, कषायका त्याग होता है, गुणोंमें अनुराग होता है, और क्रियाके विषयमें अप्रमाव होता है, वहीं मङ्गल और सुखका साधन-रूप धर्म रहता है।

"और भी कहा है, कि—

मज्जविसयकसाया निद्दाविकहाय पञ्चमी भणिआ।
एए पंचपमाया जीवं पाडंति संसारे॥"

अर्थात्—"मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा-ये पाँच प्रमाद जीवको संसारमें डालते हैं।

"इसलिये हे भव्य जीवो! तुम इस संसारकी मोह-माया में न पड़ो। जैन—धर्मका तत्त्व जानकर उसका आचरण करो। मनुष्य-जन्म, आर्य-क्षेत्र, सिद्धान्त-श्रवण और श्रद्धा-ये चार चीज़ें बड़ी मुश्किलसे मिलती हैं। हे प्राणियों! यदि तुम सुख चाहते हो, तो फिर प्रमादका आचरण क्यों करते हो? प्रमादसे तो नरकादि दुर्गतिकी प्राप्ति होती है, जिसमें पड़कर मनुष्यको बड़े बड़े दुःख उठाने पड़ते हैं। इसलिये तुम प्रमादको छोड़ कर धर्मकी आराधना करो। इस चञ्चल काया द्वारा स्थिर धर्मका साधन किया जा सकता है, इसलिये यह मलयुक्त और क्षणभङ्गुर देह पाकर इसे सार्थक बनाना चाहिये। जैसे दरिद्र को चिन्तामणि-रत्न मिलना आसान नहीं है, वैसे ही समकित आदि गुणोंकी सम्पत्तिसे संयुक्त धर्म-रूपी चिन्तामणि-रत्न पाना भी बड़ा ही कठिन है। ऐसे अमूल्य रत्नको पानेका सुयोग हाथमें रहते हुए भी तुम प्रमादमें समय नष्ट न करो।

"जिसकी मृत्युके साथ मित्रता हो, जिसमें मृत्युसे दूर भाग जानेकी शक्ति हो अथवा जो यह जानता हो, कि मैं तो मरूँगाही नहीं, वह अलबत्ता यह सोचे, कि मैं आगे दिन धर्मका

साधन कर लूँगा; परन्तु जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता नहीं, जो मृत्युसे दूर नहीं भाग सकता हो और जो यह जानता है, कि मैं एक दिन ज़रूरही मरूँगा, वह प्राणी भला क्योंकर कहता है, कि मैं कुछ दिन बाद धर्म कर लूँगा। इसलिये हे भव्य प्राणियो! जो धर्म-कार्य तुमसे आज करते बन पड़े, उसे कलके लिये न रख छोड़ो; क्योंकि यह आयु बड़ीही चञ्चल है। इसका कोई भरोसा नहीं है। जैसे सेर हरिनोंके झुण्डमें से अपने शिकारको पकड़ ले जाता है, वैसेही काल मनुष्यको भाई-बन्धुओंके बीचसे उठा ले जाता है। उस समय उसके माँ-बाप, भाई-बन्धु, जोरू-बच्चे, कोई उसके सहायक नहीं होते। सबके देखते-देखते प्राणी अकेलाही चला जाता है। इस संसारमें जीवोंका जीवन पानीके बुलबुलेके समान है। जैसे वह पैदा होतेही मर जाता है, वैसेही जीव भी जिस दिन पैदा होता है, उसी दिनसे मृत्यु उसके पीछे लग जाती है। सम्पत्ति भी पानीकी लहरकी तरह चञ्चल है और पुत्र-पौत्रादिका प्रेम भी स्वप्नके समान है। इसलिये जो कुछ धर्मकार्य करते बने, कर लेना चाहिये। यही इस संसारमें सार है।

"हे भव्य प्राणियो! धर्म करते हुए जो स्वाभाविक कष्ट शरीर को सहन करने पड़ते हैं, वह तो तुमसे सहे नहीं जाते; पर ज़रा यह भी तो सोचो कि यह जीव पूर्वमें नरकके भयङ्कर दुःख भोग आया है। यही नहीं उससे भी अनन्त गुण

अधिक दुःख जीवको नीगोदमें भोगना पड़ता है। इस बातका विचार कर, पुनः वैसे दुःख न सहने पड़े, इस विचारसे तुम स्वतन्त्रताके साथ धर्मका साधन करो और ऐसा करते हुए जो कुछ कष्ट उठाने पड़ें, उन्हें सह लो। यदि स्वतन्त्रताके साथ व्रत, तपस्या आदिके कष्ट नहीं सहन करोगे, तो फिर दूसरे जन्ममें तिर्यञ्च, नरकादिकी गति प्राप्त कर, परतन्त्रताके साथ अनन्त, दुःख भोग करोगे।

"इस संसारमें जन्मका दुःख, बुढ़ापेका दुःख, रोगका दुःख वियोगका दुःख, शोकका दुःख और मरणका दुःख आदि अनेक प्रकारके दुःख भरे हुए हैं। ऐसा होते हुए भी तुम क्यों उसमें आसक्त होते हो! जबतक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हुई हैं और पूरी तरह काम दे रही है, जबतक वृद्धावस्था-रूपिणी राक्षसी प्रकट नहीं हुई है, जबतक रोग-रूपी विकार नहीं प्रकट हुआ है और जबतक मृत्यु नहीं आयी है, तबतक धर्मका आराधना कर लो। जब इन्द्रियाँ निकम्मी हो जायेगी, बुढ़ापा आ जायेगा, रोग घेर लेंगे, मृत्यु सरपर आ पहुँचेगी, तब क्या तुम खाक धर्मकी आराधना करोगे? जो वर्त्तमान समयको काममें नहीं लाता, समयानुसार कार्य नहीं करता, उसे पीछे पछताना पड़ता है। जैसे घरमें चारों ओर आग लग जानेपर कोई कूँआ नहीं खोद सकता, वैसेही हे भव्य जीवो! जब काल खोपड़ीपर आ पहुँचता है, तब कोई धर्मकी आराधना कैसे कर सकता है? इसलिये—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब।
पलमें परलय होयगो, बहुरि करोगे कब्ब॥

"इसलिये हे भव्यजीवो! तुम निरन्तर अपने कुटुम्बवालों को 'मेरा-मेरा' कहा करते हो; परन्तु तुम्हारा यह कुटुम्ब कहाँसे आया और कहाँ जायेगा, तुम कहाँसे आये हो और कहाँ जाओगे, कुछ इसकी भी तुम्हें ख़बर है? ये तुम्हारे कोई नहीं हैं, न ये साथ आये हैं, न साथ जायेंगे, तो फिर तुम कौन हो और तुम्हारे ये कुटुम्बी कौन हैं। न तुम उनके कोई हो और न वे तुम्हारे कोई हैं। कोई किसीका नहीं है। कोरी अज्ञानताके मारे तुम मेरा तेरा करते रहते हो। इस अज्ञानताको दूर कर, उलटे मार्गपर चलना छोड़कर धर्मका सीधा मार्ग पकड़ो, जिसपर चलकर तुम शिवपुरको पहुँच सको। इसीसे तुम्हारी आत्माकी सार्थकता होगी और तुम्हें मनोवाञ्छित सुख मिलेगा।"

इस प्रकार केवली भगवान्‌की दी हुई देशना श्रवणकर अनेक भव्य प्राणियोंको प्रतिबोध प्राप्त हुआ। कितनेही जीवों ने पञ्चमहाव्रत ग्रहण किये, कितनोंने समकित मूल बारह व्रत अङ्गीकार किये, कितनेही समकितधारी हो गये और कितनेही जीव भद्रिकभावी हो गये। इसके अनन्तर कुछ पूछनेकी इच्छासे चम्पक सेठी उठ खड़ा हुआ और केवली भगवान्‌को पञ्चाङ्ग-प्रणामकर, बड़ी विनयके साथ पूछनेलगा,—"हे भगवान्! मैंने पूर्व भवमें कौनसा ऐसा सुकृत किया

था, जिसके फलसे मुझे इतनी सम्पत्ति प्राप्त हुई और वृद्धदत्तने कौनसा ऐसा पाप किया था, जिससे उसकी एक करोड़की सम्पत्ति भी हाथसे गयी और भाई सहित मृत्युको भी प्राप्त हुए। किस कर्मके कारण मैं ऐसा अज्ञातकुलवाला हुआ और इस वृद्धाके साथ पूर्व जन्ममें मेरा कौनसा सम्बन्ध था, जिसके कारण उसने इस प्रकार निस्वार्थ भावसे मेरा पालन-पोषण किया। इस वृद्धदत्तके साथ मेरा पूर्व जन्मका कौनसा वैर क्या था, जिसके कारण उसने दो-दो बार मेरे प्राण लेने का उद्योग किया। हे लोकालोकको प्रकाशित करनेवाले! आप कृपाकर मेरे इन सन्देहोंको दूर करें।"

केवली भगवान्ने कहा,—"हे चम्पक। यह सब बातें तुम्हारे पूर्वजन्मके सम्बन्धसेही हुई हैं। सुनो, मैं तुम्हारे पूर्व-भवकी बातें बतलाता हूँ।

चम्पकके पूर्व भवकी कथा ।

सु मेलकापुरीके पासवाले तपोवनमें किसी समय कन्द-मूल खाकर रहनेवाले;भवदत्त और भवभूति नामके दो तपस्वी रहते थे, जो दुष्कर तप करते हुए, पञ्चाग्नि-स्नान और धूम्रपान आदि किया करते थे। उन में भवदत्त तो मनका बड़ा ही मैला था और भवभूति बड़ाही सीधा सच्चा था। दोनों मरनेके बाद यक्ष हुए। वहाँसे हट-नेपर भवदत्तका जीव तो अन्यायपुर नामक नगरका रहने-वाला वञ्चनामति नामक सेठ हुआ और भवभूतिका जीव पाटलीपुर नामक नगरमें महासेन नामका क्षत्रिय हुआ, जिस के पास अपार सम्पत्ति थी, जिसकी प्रकृति सरल और नम्र थी और जिसका स्वभाव बड़ा ही विश्वासी था। एक समय-की बात है, कि महासेन बहुतसी अच्छी-अच्छी चीज़ें साथ लेकर तीर्थ-यात्रा करने चला। जाते—जाते वह क्रमशः अन्यायपुरमें पहुँचा। वहाँसे और भी आगे जानेका विचार होनेके कारण उसने एक कपड़ेमें पाँच रत्न बाँधकर सेठ वञ्च-

नामतिके यहाँ अमानतके तौरपर रख दिये। इसके बाद वह आगे बढ़ा।

इधर वञ्चनामतिने उस कपड़ेकी गाँठको खोलकर देखा, तो उसमें लाख-लाख रुपयेके पाँच रत्न नज़र आये। देखते ही उसके मुँहसे लार टपक पड़ी। उसने पाँचों रत्नोंमेंसे एक किसी व्यापारीके हाथ बेंचकर लाख रुपये इकट्ठे कर लिये और अपने रहनेके लिये एक बहुत बड़ा महल तैयार कराया। इसमें पूरे एक लाख रुपये खर्च हुए। बाक़ीके चार रत्नोंको उसने एक गुप्त स्थानमें छिपाकर रख दिया।

कुछ दिन बाद तीर्थ-यात्रासे लौटकर महासेन वहाँ आ पहुँचा और अपनी धरोहर लेनेके लिये सेठ वञ्चनामतिके घर आया। ज्यों ही उसने सेठके पास आकर प्रणाम किया। त्यों ही उसने ऐसा मुँह बनाया, मानों उसको उसने कभी देखा ही नहीं हो और पूछा,—"तुम हो कौन और यहाँ कहाँ से आ रहे हो? मैं तो तुम्हें पहचानता भी नहीं। तुम कहीं किसी दूसरेके धोखेमें तो मेरे पास नहीं चले आये? मैं कभी किसीकी अमानत या धरोहर नहीं रखता; फिर तुमसे बिना जान-पहचानके आदमीकी चीज़ कैसे रखूँगा? जाओ, दूसरा घर देखो,यहाँ तुम्हारी कोई चीज़ अमानतमें नहीं पड़ी है।"

वणिकोंके लिये कहा हुआ है, कि—

अपलपति गुप्तदत्तं, प्रत्ययदत्ते च संशयं कुरुते।
क्रय विक्रये च लुम्पति, तथापि लोके वणिक् साधुः॥

अर्थात्—"वणिक चुपचाप दी हुई चीज़को साफ़ डकार जाता है, प्रत्यक्ष दी हुई चीज़में भी सन्देह किया करता है, ख़रीद-बिक्रीके समय पूरी लूट मचाता है; तो भी लोग उसे साधु (साहूकार) बतलाते हैं।'

मानेन किञ्चित्कलयापि किंञ्चित्।
मापेन किञ्चित्तुलयापि किञ्चित्॥
किञ्चिच्च किञ्चिच्च समाहरन्तः।
प्रत्यक्ष चौराः वणिजो भवन्ति॥२

अर्थात्—"कुछ मोल-तोल करनेमें खाते हैं, कुछ नापमें खा जाते हैं, कुछ तौलनेमें खा जाते हैं, कुछ कलाबाज़ी करके खा जाते हैं। इसी तरह थोड़ा-थोड़ा करके खा जानेवाले ये बनिये पूरे चोर हैं।

वणिजां परमान्नं च वेश्यानां परमो निधिः।
लिंगिनां परमाधारो मृषावाद नमोस्तुते॥३

अर्थात्—"बनिये जिसे खीरकी तरह निगल जाते हैं, वेश्याओंकी जो बड़ी भारी सम्पत्ति है, ऊपरसे कपटका वेश रचानेवालोंका जो सबसे अवलम्ब है, उस मिथ्यावादको नमस्कार।

ऊपरके श्लोकोंमें बतलाये हुए वणिकोंके स्वभाव आदिका विचार करता और वञ्चनामतिके इस प्रकार सफ़ेद झूठ बोलने पर मन-ही-मन आश्चर्य करता हुआ बेचारा महासेन बड़ा ही दुःखित हुआ और रोता हुआ राजदरबारमें आया। वहाँ उसने एक आदमीसे पूछा,—"भाई! यहाँका राजा कौन है?"

उसने कहा,—"हे परदेशी! इस नगरका नाम अन्याय-पुर है। यहाँ निर्विचार नामके राजा राज्य करते हैं। बड़े ही नीच आचार-विचारवाला श्रीकरण नामका अध्यक्ष है। यहाँका कोतवाल हड़पमल है, जो सबका सब कुछ लूट लेता है। मन्त्रीका नाम सर्वभक्षक है। प्रधानका नाम अज्ञान-राशि है। वैद्यका नाम प्राणघातक है और उनकी दवाओंमें घर-भरको जला देनेकी शक्ति है। राजाके पुरोहितका नाम शिलाप्रातु * है। यहाँके नामी सेठ वञ्चनामति † हैं। यहाँकी प्रधान वेश्या कपट-कोशा † है।"

राज्यके भिन्न-भिन्न लोगोंका यह वर्णन सुनकर महासेनने अपने जीमें सोचा,—जब यह हाल है, तब तो मुझे उन रत्नों से हाथ ही धो रखना चाहिये। ऐसे अन्धेरपुरमें न्यायकी कहाँ आशा है? जब न्याय ही नहीं है, तब मेरी चीज़ कहाँ मिलनेकी है? जब सारे नगरमें अन्याय और अन्धेर ही ही फैल रहा है, तब इस नक्कार खानेमें मुझ तूतीकी आवाज़ कौन सुनता है।"

इसी तरह बड़ी देरतक सोच-विचार करनेके बाद उसने मन-ही-मन यही निश्चय किया, कि यहाँ तो फ़र्याद करनी ही बेकार; क्योंकि कुछ सुनवाई होनेकी आशा नहीं है, उलटे

* शिलाप्रातु—पत्थर जैसा।
¶ वञ्चनामिति—जिसकी बुद्धि ठग-विद्यामें प्रवीण हो।
कपटकोशा...कपटका खजाना।

जान जानेका भी भय है, इसलिये दरबारमें न जाकर कोई और तरकीब लड़ानी चाहिये।

यही सोचकर उसने वहाँसे क़दम बढ़ाया और कपटकोशा नामकी वेश्याके पास आ पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने अपने रत्नोंकी कथा उससे कह सुनायी। सुनकर उस वेश्याको बड़ी दया उपजी और उसने कहा,—"अच्छा, तुम सोच न करो। मैं तुम्हारा माल बरामद करा दूँगी।"

यह कह,वह अपने तमाम रत्न—जड़े गहनों और क़ीमती जवाहिरोंको सन्दूकोंमें भरकर अच्छे—अच्छे कपड़े, इत्र, फुलेल, कस्तुरी मोती और मूंगाँ आदिकी अलग-अलग पोटलियाँ बाँधे चतुर दासियोंको साथ लिये हुई सेठ वज्रनामतिके घर पहुँची और बोली,—"सेठजी! मेरी बहन जो वसन्तपुर नामक नगरमें रहती है बहुत बीमार है उसके बचनेकी कोई आशा नहीं है, इसलिये मैं उसके पास जाना चाहती हूँ। अतएव आप मेरा यह सब क़ीमती माल—असबाब अपने यहाँ अमानतके तौरपर रख लें। यदि मेरी बहन मर गयी तो आप यह सब बेंच-बाँचेकर मेरे नामपर धर्म—कार्योंमें ख़र्च कर दीजियेगा।" यह सुन, सेठने झटपट उसकी बात स्वीकार कर ली; क्योंकि उस लालचीने देखा, कि यहाँ तो बड़ी गहरी रक़म हाथ आया चाहती है।

इसी समय पहलेसे बतलाये हुए इशारेके मुताबिक़ महासेन वहाँ आ पहुँचा और सेठसे अपने रत्न वापिस मगाँने

लगा। अब तो उस वेश्याके सामने अपनी साहूकारी बतलानेके लिये उस बेईमान सेठने कहा,—"अजी! ले न लो, तुम्हारे रत्न क्या कहीं खोये हैं?" यह कह उसने जो चार रत्न रखे थे, वे लाकर दे दिये। यह देख, महासेनने कहा, कि मैंने तो पाँच रत्न उस गाँठमें बाँध रखे थे। यह सुन, उसने अपने पुत्रको बुलाकर कहा,—"मैंने इनका पाँचवाँ रत्न धनावह सेठको दिया था, उनके यहाँसे माँग लाओ। उसका पुत्र एकदम ही वह रत्न दाम देकर ले आया।

इसी समय पहलेसे सधा हुआ एक आदमी दौड़ा हुआ आया और उस वेश्याको बधाई देता हुआ बोला—"लो, बीबी? अब तो मुँह मीठा करो। तुम्हारी बहन एकदम अच्छी हो गयीं—उनका सारा रोग जाता रहा। शरीर एकदम नीरोग हो गया। इसलिये अब तुम्हारे जानेकी कोई ज़रूरत नहीं है। मैं खुद उन्हें भली-चङ्गी देखे आ रहा हूँ।"

यह समाचार सुनतेही कपटकोशाने बहनके यहाँ जानेका विचार त्याग दिया और अपनी सब चीज़ें अपने घर वापिस भिजवा दीं। इसके बाद वह खुश होकर नाचने लगी। उसे नाचते देख महासेन भी नाचने लगा और सेठ वञ्चनामति भी नाच उठा। यह अचम्भा देख, किसीने उस गणिकासे पूछा,—"तुम क्यों नाच रही हो?"

उसने कहा,—"मेरी बहन मर रही थी। अब जी उठी, इसीसे खुशीसे नाचती हूँ।"

फिर उसने महासेनसे पूछा,—"भाई! तुम क्यों नाच रहे हो?"

महासेनने कहा,—"मेरे डूबे हुए रत्न मुझे मिल गये, इसी लिये खुश होकर नाच रहा हूँ।"

फिर वञ्चनामतिसे भी उसने यही सवाल किया। उसने कहा—"मैंने आजतक सारी दुनियाको ठगा, पर किसीने मुझे नहीं ठगा था। आज इस वेश्याने मुझे खूब धोखा दिया। और पूरा उल्लू बनाया, इसी लिये मैं भी नाच रहा हूँ।"

इसके बाद महासेन जब उस वेश्याके साथ-साथ चला गया, तब सेठने सोचा,—"महासेनके जो रत्न मैंने दबा रखे थे, वे भी गये, जो रत्न गिरवी रख कर घर बनाया था; वह भी गया और हाथमें आते-आते उस वेश्याके कुल रत्नादि भी चले गये! मेरा तो सर्व नाशही हो गया! साथ-ही-साथ दुनियामें पूरी हँसी भी हुई, कि एक वेश्याने मुझे चुना लगा दिया। इस लिये अब मैं यहाँ कौनसा मुँह लेकर रहूँ?

यही सोचकर वह बहुत दुःचित हो, लोगोंकी हँसी-दिल्लगी और ताने-तिश्नेसे ऊबकर संसार छोड़, तपस्वी हो गया।

इधर कुमार महासेन अन्यायपुरसे निकल कर अपने घरकी तरफ़ चला। वहाँ पहुँच कर इन पाँचों रत्नोंके द्वारा उसने सब तरहके सुख पाये।

कुछ दिन बाद उस देशमें बारह वर्षका अकाल पड़ा।

भूखों तपते हुए लोग जान देने लगे। कितनेही आदमी दूसरे दूसरे देशोंमें भागकर चले गये। कितनेही पेट भरनेके लिये अपने बाल बच्चोंको बेंचने लगे। जगह-जगह बेचारे ग़रीबों-की लाशें पड़ी दिखाई देने लगीं। अपने देशकी यह दुर्दशा देख कर महासेनके हृदयमें बड़ी दया उपजी और उसने जगह-जगह दानशालाएँ खुलवा दीं, जिनमें दीनों, अनाथों और भिक्षुकोंको खाना मिलने लगा। बीमारोंकी दवा-दारू का प्रबन्ध किया गया। उसने सारे देशमें इस बातकी डौंड़ी पिटवा दी, कि जिसे भोजनकी दरकार हो, वह मेरी दान-शालामें चला आये। जो लोग पहले धनवान थे और अब ग़रीब हो गये थे, उन्हें गुप्त रूपसे अनाज वग़ैरह दिया जाने लगा। इन्हीं दिनों एक निस्सहाया स्त्री, जिसके शरीरपर भूखके मारे सूजन हो आयी थी, महासेनके सत्रागारमें (दान-शाला)में पहुँची। उसने वहाँ खूब ठूँस-ठूँसकर खाया। उसकी पाचनशक्ति बहुत कमज़ोर हो गयी थी। इसलिये उसे इतना ठूँस-ठूँस कर खाया हुआ अन्न हज़म नहीं हुआ। वह बीमार पड़ गयी। यह देख, महासेन उसे अपने घर ले आया और अच्छे-अच्छे वैद्योंसे उसकी दवा करने लगा। इसके प्रभावसे वह थोड़ेही दिनोंमें नीरोग हो गयी। महासेनने उसे अपनी माँकी जगह देकर उसे अपनेही घरमें रख लिया। महासे-नकी स्त्रीका नाम गुणसुन्दरी था। वह भी निरन्तर अनु-कम्पा-दान देनेके बादही भोजन किया करती थी। इतनाही

नहीं, बल्कि अपनेही हाथों दीन-अनाथोंको भोजन परोसकर खिलाया करती थी।

"हे चम्पक! अनुकम्पा-दानके प्रभावसे उसी महासेनका जीव यों तुममें आया है और गुणसुन्दरही मृत्युके अनन्तर तिलोत्तमा होकर जन्मी है। जिस स्त्रीको महासेनके रूपमें तुमने दानशालासे लाकर घरमें अपनी माताका दर्जा दे रखा था, वही तो यह बुढ़िया है, जिसने इस जन्ममें तुम्हारी जान बचायी और तुम्हें पाला-पोसा। वंचनामति सेठही तपस्या करके सेठ बुद्धदत्तके रूपमें उत्पन्न हुआ और पूर्व भवमें उसने तुम्हारे पाँच रत्न हड़प लेने चाहे थे। इसीलिये इस भव में उसकी ९६ करोड़ मुहरें तुम्हारे हाथ लगीं। हे चम्पक! इस प्रकार पूर्व भवके कर्मोंका उदय हुआ। पूर्वके अनन्त तीर्थङ्कर कह गये हैं, कि—

> वध मरण अब्भक्खाण, दाणपर धण विलोवणाईणं।
> सव्व जहन्नो उदअ, दस गुणीउ कल्ल कयाण॥

अर्थात्—"वध, मरण, झूठा कलङ्क, दान और पराये धन को हड़पना—इन कर्मोंके बड़े बुरे परिणाम होते हैं। कमसे-कम किये हुए कर्मका दसगुणा फल भोगना पड़ता है।

"हे चम्पक! तुमने पूर्व भवमें वञ्चनामतिको चूना लगाया था, इसी लिये उसके मनमें तुम्हारे प्रति वैर उत्पन्न हुआ और उसने तुम्हें मार डालनेकी चेष्टा की। महासेन वाले भवमें तुम्हें अपने बड़े ऊँचे खानदानमें पैदा होनेकी घमण्ड

हुआ था, इसी लिये इस बार तुम काम्पिल्य नगरके सेठ त्रिविक्रमके घरमें रहनेवाली दासीके गर्भसे उत्पन्न हुए।"

इस प्रकार अपने पूर्व जन्मका वृत्तान्त श्रवण कर चम्पक श्रेष्ठीने अपनी स्त्रीके साथही दीक्षा ग्रहण कर ली और सम्यक् प्रकारसे चारित्र धर्मकी आराधना करता हुआ स्वर्ग चलागया।

वहांसे च्यवन होनेपर वह श्रीमहाविदेह क्षेत्रमें फिर मनुष्य के घर जन्म ले, उचित समय पर दीक्षा ग्रहण कर, केवल ज्ञान लाभकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

अनुकम्पा-दानके विषयमें बहुत दिनोंसे कही-सुनी जाती हुई चम्पक श्रेष्ठीकी कथा हमने भी पाठकोंको सुना दी। अब इसे पढ़-सुनकर आप लोग यथाशक्ति निरन्तर दीन-अनाथों और निर्बल रोगियों और निरवलम्ब मनुष्यों पर दया करके दान देनेकाही निश्चय कर लें, तो हम समझेंगे कि हमारा इतना लिखना-पढ़ना सफल हो गया। द्रव्य पानेकी सार्थकता यही है, कि उसे भले कामों और दूसरोंकी भलाईमें खर्च करें। अगले जन्ममें सुख-सौभाग्य हो, इसके लिये अच्छे कामोंमें ही उसका उपयोग करे। इस भवमें जो प्राणी दानकी ओर लक्ष्य रखता है और निरन्तर अभय-दान, सुपात्र-दान और अनुकम्पा-दान किया करता है,उसके पास किसी जन्ममें दुःख या दरिद्रता फटकने नहीं पाती। अभयदान ज्ञानदान और सुपात्रदानसे तो मोक्ष तक प्राप्ति हो जाती है, इसलिये इस अतीव उत्तम दान धर्मका, जिसको भगवान्‌ने चार प्रकारके धर्मोंमें सबसे पहला

माना है, प्रत्येक मोक्षाभिलाषी तथा आत्महिताकांक्षी को आचरण करना चाहिये। इससे मनुष्य उत्तरोत्तर सुख प्राप्त करता है और मोक्ष सुख तकका अधिकारी हो जाता है।

आप भी ऐसाही करें, यही कामना करते हुए अब हम अपनी लेखनीको विश्राम देते हैं।